

कैदियों की दुविधा

“कैदियों की दुविधा” एक ऐसी पहेली है जो इस बात को समझने में हमारी मदद करती है कि क्यों लोग आपस में एक दूसरे के साथ सहयोग नहीं कर पाते ये जानते हुए भी कि इसमें सब का भला है.

इससे ये भी सामने आता है कि कैसे सहयोग एवं प्रतिद्वन्द्विता का जटिलता से भरा सम्मिकरण हमारी सोच एवं हमारे निर्णय को प्रभावित करता है.

उदहारण कुछ इस तरह है:

दो अपराधियों को इस शक पर गिरफ्तार किया जाता है कि उन्होंने किसी गुनाह को साथ-साथ अंजाम दिया है. पर पुलिस के पास प्रयाप्त सबूत नहीं हैं. दोनों कैदियों को दो अलग-अलग कोठरियों में बंद कर दिया जाता है. फिर जेलर दोनों के पास जाकर एक प्रस्ताव रखते हैं. अगर उनमें से एक गुनाह कबूल कर लेता है और दूसरा खामोश रहता है, तो गुनाह कबूल करने वाले को छोड़ दिया जाएगा और खामोश रहने वाले को दस साल की कैद हो जाएगी. अगर दोनों खामोश रहते हैं तो दोनों को प्रयाप्त सबूतों के अभाव में मात्र छह महीनों की कैद होगी. अगर दोनों ने गुनाह कबूल कर लिया तो दोनों को पाँच-पाँच साल की सजा होगी. हर को अब यह तय करना है कि उसे खामोश रहना है या गुनाह कबूल करना है. दोनों को इस बात का आश्वासन मिला हुआ है कि दूसरे को उनके फैसले का पता तहकिकात खत्म होने तक नहीं चलेगा.

इस पूरी स्थिति को कुछ इस तरह से प्रस्तुत किया जा सकता है:

	कैदी 2 खामोश रहता है	कैदी 2 धोखा देता है
कैदी 1 खामोश रहता है	दोनों को छह महीने कि कैद	कैदी 1: 10 साल की कैद कैदी 2: आजाद
कैदी 1 धोखा देता है	कैदी 1: आजाद कैदी 2: 10 साल की कैद	दोनों को ५ साल की कैद

दोनों कैदी कैसा व्यवहार करने वाले हैं?

क्या आप इस उदाहरण को अयोध्या विवाद या कारगिल युद्ध से जोड़ कर देख सकते हैं?

इससे यह भी पता चलता है कि प्रतिद्वंदियों की गठजोड़ ज्यादा दिनों तक काम क्यों नहीं करती.

‘कैदियों की दुविधा’ के उदाहरण में अत्यधिक संभावना यह है कि दोनों कैदी सहयोग करने की बजाये असहयोग करेंगे और गुनाह कबूल कर लेंगे. ऐसा मुख्यतः निम्न कारणों से होता है:

1. व्यक्तिगत स्वार्थ का समुदाय के हित पर हावी होना
2. विश्वास की कमी
3. यह धारणा कि मैं दूसरे लोगों से ज्यादा बुद्धिमान हूँ. (उदाहरण के लिए कारगिल, जहाँ पाक ने समझा कि भारत को बेवकूफ बनाया जा सकता है. पहले जब दोनों देश सेना को सीमा-रेखा से मीलों दूर जमीनी सतह पर रखते थे तो खर्च काफी काम था. कारगिल के उपरांत अब दोनों राष्ट्रीय सेनायें अविश्वास के कारण निर्मम तथा असहनीय वातावरण के बावजूद सीमा से काफी करीब रख दी गयी है और इस तरह से जान-माल दोनों का ही नुकसान हो रहा है.)

४. हार की भावना और ठेस से बचने की चाहत. (उदाहरण के लिए अयोध्या विवाद जहाँ एक समुदाय द्वारा अत्यधिक खुशी मनाने पर दूसरा समुदाय कुंठित होकर स्वतः ही समझौते की जगह संघर्ष का मार्ग अपना लेगा.)

आपमें से जो इस दिलचस्प विषय के बारे में कुछ और ज्यादा जानना चाहते हैं तो उनके लिए मैं 'कैदियों की दुविधा' से मिलते-जुलते वास्तविक जीवन के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ:

- दो देशों के बीच हथियारों की होड़ जिसमें पैसे उत्पादक कार्यों की जगह बेकार में खर्च किए जाते हैं.
- एक क्लब में आग लगी है और सभी दरवाजे की ओर भागने की होड़ में बुरी तरह से फँस कर जल जाते हैं.
- किसी कार्यक्रम में ठीक से देखने के लिए एक आदमी के खड़े होने पर पीछे के लोग भी खड़े हो जाते हैं और धीरे-धीरे सभी खड़े हो जाते हैं. हालात यह होती है कि बैठे-बैठे देखने से भी बुरी स्थिति हो जाती है.
- बैंक फेल होने वाला है यह सुनकर जमाकर्ता रफ्तार से पैसे उठाने लगते हैं और बैंक वाकई में फेल हो जाता है.
- एक चुनाव में जहाँ कई सत्य पारदर्शिता से उपलब्ध नहीं है, एक उम्मीदवार सच को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करता है और लोग उसे सच मानने लगते हैं. मजबूर होकर दूसरा उम्मीदवार भी अफवाहों का सहारा लेने लगता है और इन सबके बीच सच खो जाता है.
- आफिस टाईम पर ट्रैफिक में आगे जाने की आपा-धापी में लोगों का गैर-अनुशासित व्यवहार जिससे जाम होकर और देरी हो जाती है. रेलवे क्रॉसिंग पर यह स्थिति काफ़ी नजर आती है जब लोग लाइन तोड़कर दोनों तरफ रास्ता जाम कर देते हैं.
- कोका-कोला और पेप्सी में मूल्यों की ऐसी होड़ जिसमें एक कंपनी इस सोच से कीमत कम कर देती है कि उसे अधिक बिक्री का मौका मिल जाएगा. इसे देखकर दूसरी कंपनी भी मूल्य कम कर देती है और अंत में दोनों का नुकसान हो जाता है.

कैदियों की दुविधा की तरह ही "स्वयंसेवकों की दुविधा" भी एक पहलू है जहाँ एक समुदाय या परिवार में किसी न किसी को कोई ऐसा कार्य करना रहता है जिसे अगर कोई न करे तो सबको नुकसान हो जाएगा.

आप घर में बैठे हैं और बिजली चली जाती है. अब अगर बिजली देने वाली कंपनी को फोन किया जाए तो तुरंत स्थिति ठीक हो सकती है. पर हम सब इस इंतज़ार में रहते हैं कि कोई न कोई तो फोन कर ही देगा, फिर मैं क्यों करूँ.

ऐसी कई परिस्थितियाँ बनती हैं जिसमें समुदाय के हित को ध्यान में रखकर व्यक्तिगत हितों को नकारना पड़ता है. लोग अगर ऐसा स्वतः कर पाए तो बहुत अच्छा, नहीं तो लोगों से जबरन स्वार्थ त्याग करवाना भी उचित है. उदाहरण है:

- जीवन रक्षा नौका जहाँ अत्यधिक भीड़ के कारण एक दो लोगों को उतरना पड़े या उन्हें उतारना पड़े ताकि बाकी सबकी जान बच सके.
- आप और आपके ९९ दोस्त अलग-अलग कमरे में बंद हैं और एक दूसरे की आवाज नहीं सुन सकते. सभी कमरे में एक बटन है. अगर आप इस बटन को दबाते हैं तो आपकी मौत निश्चित है. पर अगर निर्धारित समय तक १०० में से १ बटन भी न दबे तो सभी की मौत निश्चित है.

मिलिटरी में सैनिकों को यह प्रशिक्षण दिया जाता है कि अगर वे गुप्त गड्ढे में टोली में एक साथ हों और वहाँ एक बम आकर गिरे तो अपने शरीर से उस बम को ढक लेना चाहिए ताकि बाकी लोगों की जान बच सके. क्योंकि अगर किसी ने ऐसा नहीं किया तो सभी की मौत निश्चित है. ऐसा कर कम से कम आप अपनी कीर्ति को अमर कर सकते हैं.

फियुजियन भाषा में एक शब्द है 'ममीलापीनातपाई' जिसका अर्थ होता है 'एक दूसरे को इस आशा से देखना कि दोनों में कोई कुछ ऐसा करेगा जो दोनों करना चाहते हैं पर कर नहीं पा रहे हैं.'

'कैदियों की दुविधा' जैसी परिस्थिति अगर सामने हो तो जो सवाल हमें अपने आप से पूछना चाहिए वो है- "कैसी दुनिया में मैं जीना चाहूँगा? मेरा सच्चा हित किसमें है?" एक ऐसी दुनिया जिसमें सभी विवेकपूर्ण तरीके से यह सोचकर फैसले लें कि सहयोग करना असहयोग से ज्यादा बेहतर है, न कि असहयोग के फैसले से होने वाले क्षणिक लाभ के वशीभूत सभी सार्वजनिक हितों की उपेक्षा करते रहें.

यह परम सत्य है कि क्षणिक लाभ द्वारा निर्धारित दुनिया रहने लायक नहीं रह जायेगी. (दुनिया की वर्तमान स्थिति जहाँ पर्यावरण की स्थिति मनुष्यों ने लगभग ऐसी ही कर दी है, ऐसी ही गलत सोच का परिणाम है.) किसी को भी किसी पर भी किसी भी चीज के लिए कैसा भी विश्वास नहीं रहेगा. उचित यही है कि हम विश्वास की एक छलांग लगायें, ऊँची सोच को अपनाएँ और ये माने कि और सभी भी ऐसी ही ऊँची सोच रख विश्वास की छलांग लगाने के लिए तत्पर हैं.

एक अफवाह सुनकर कि किसी वस्तु का अभाव होने वाला है, उदाहरण के लिए चाय, उचित है कि हम सब चाय की थोड़ी कम खरीदारी करें और अनावश्यक जमा करने की होड़ में ना फंसे, जिससे मांग की कमी होकर कीमतें स्थिर हो जायेंगी. पर होता अक्सर उलटा है और सबसे एक कदम आगे रहने की हमारी चाहत का फल विपरीत होता है. अभाव और कीमतें दोनों और भी बढ़ जाते हैं.

स्वस्थ समाज, परिवार एवं संस्थाएँ ऐसे सदस्यों पर निर्भर करती हैं जो सार्वजनिक हितों के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की आहूति देने को तैयार हों.

सार्वजनिक हितों के मामले में 'स्वयंसेवकों की दुविधा' की भांति लोग अगर यह सोचकर खामोश रह जाँ कि 'हम ही क्यों', तो कल मुड़कर जब इस आज को देखेंगे, तो ऐसा सोचना पड़ सकता है कि काश.....

राजेश जैन (098360 80488)